AMOGHVARTA
ISSN : 2583-3189

उच्च शिक्षा से अनुप्राणित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त शिक्षक वर्ग

ORIGINAL ARTICLE

Authors

रवि कुमार
शोधार्थी

डॉ. आलोक मिश्र
शोध निर्देशक
हिंदी विभाग
स्वामी शुकदेवानन्द कॉलेज
शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

शोध सार

साहित्य मनुष्य के चितवृत्ति को प्रफुल्लित ही नहीं करता यह जीवन का विस्तृत विश्लेषण, परिष्करण एवं मानव मन का शुद्धिकरण भी करता है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान युग के समाज का चित्रण साहित्य में ही तो दृष्टिगोचर होता है। समाज के चित्रण को आधार बनाकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि "प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है।"[1] साहित्य की समस्त विधाओं में उपन्यास सारगर्वित, प्रासंगिक एवं लोकप्रिय विधा है। इस लोकप्रिय विधा को आधार बनाकर हिंदी साहित्य के मूर्धन्य उपन्यासकारों ने उच्च शिक्षा से अनुप्राणित हिंदी उपन्यासों में जहां एक ओर अध्यापक वर्ग के उच्च आदर्श, संघर्ष, बौद्धिकता, नैतिकता एवं कर्तव्यनिष्ठता का चित्र अंकित किया है, वहीं दूसरी ओर उच्च शिक्षण संस्थानों में कार्यरत प्रोफेसरों की आचरणहीनता, पदलोलुपता, नैतिक पतन, भ्रष्टाचार, गुंडागर्दी जैसी तमाम विसंगतियों की जो कटु आलोचना की है वह समाज के लिए एक आईना है। भारतीय शिक्षा आज से नहीं प्राचीन काल से विश्वसनीय एवं पूजनीय रही है, जो विद्यार्थियों के अंतःकरण का परिमार्जन कर उन्हें समाजोन्मुखी एवं सभ्य नागरिक बनाने का कार्य करती है। यह दुरूह कार्य अध्यापकों के मार्गदर्शन से ही संभव है। भारत के संत मनीषयों ने भी गुरु को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। महान समाज सुधारक संत कबीर दास जी ने अपने काव्य में गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया है। शिक्षक राहों के अन्वेषी एवं पथ प्रदर्शक होते हैं। वे अपने ज्ञान के प्रकाश से विद्यार्थियों के जीवन को आलोकित कर राष्ट्र निर्माण में अतुलनीय योगदान देते हैं। समाज के परिदृश्य को बदलने में शिक्षक महती भूमिका के रूप में अपनी सेवाएं प्रदान करते हैं, किंतु वर्तमान समय में उच्च शिक्षण संस्थानों में कार्यरत अध्यापकों की छवि पर जो प्रश्न चिन्ह उठते हैं वह अति चिंतनीय है। विश्वविद्यालय परिसर में जहां एक ओर ऐसा अध्यापक वर्ग है जो छात्रों के भविष्य को लेकर चिंतित एवं सजग है। वह विद्यार्थियों में जीवनपयोगी मूल्यों का विकास कर उन्हें जिम्मेदार एवं सभ्य नागरिक बनाने के लिए संकल्पित है। वहीं दूसरी ओर एक वर्ग ऐसा भी है जो राजनीति, भ्रष्टाचार, परिवारवाद, जातिवाद, नैतिक पतन, आचरणहीनता जैसी तमाम विसंगतियों में पड़कर छात्रों के जीवन को अंधकार के गर्त में डुबोने के साथ–साथ विश्वविद्यालय की गरिमा को भी ठेस पहुंचा रहा हैं। उपरोक्त दोनों स्थितियों के संदर्भ में जहां एक वर्ग को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कृत कर प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है, वहीं दूसरे वर्ग पर अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सुधार करने की। शोधार्थी का यह शोध पत्र उच्च शिक्षा से अनुप्राणित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त अध्यापक वर्ग की वर्तमान स्थित को संदर्भित करने के साथ–साथ प्रेरणादायक एवं विचारोत्तेजक पहलुओं को भी उठाता है।

मुख्य शब्द

शिक्षा, उपन्यास, विश्वविद्यालय, संस्थान, अध्यापक.

उच्च शिक्षण संस्थान जीवन उन्नयन के केंद्र मात्र ही नहीं हैं यह विद्यार्थियों में समता, समानता, सरसता एवं संकल्पना के भावों को पुष्पित एवं पल्लवित करने का कार्य करते हैं। किसी भी राष्ट्र की प्रगति युवाओं के कंधों पर होती है। युवा राष्ट्र की तस्वीर बदलने में महती भूमिका का निर्वहन करते हैं। युवाओं के भविष्य को संभालने का उत्तरदायित्व शिक्षकों के कंधों पर होता है। एक कर्तव्य परायण शिक्षक सरस्वती मंदिर का सच्चा साधक होता है, जो जीवनपर्यंत अपने कर्तव्य का निर्वहन करता रहता है, किंतु यह विडंबना का विषय है कि एक ईमानदार शिक्षक हमेशा संघर्षों से जूझता रहता है। ऐसे कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक को नीचा दिखाने के लिए उसके अपने ही साथी शिक्षकों द्वारा तरह–तरह के षड्यंत्र रचे जाते हैं, ताकि वह डरकर अपने सदमार्ग मार्ग से विचलित हो जाए। औद्योगीकरण, भ्रष्टाचार, राजनीति और बाजारवाद ने जिस तरह उच्च शिक्षण संस्थानों की गरिमा का विध्वंश किया है, वह अति चिंतनीय है। छात्र संघ, अध्यापक संघ एवं अशैक्षणिक कर्मचारी संघ के दबाव में के. एल. कमल के उपन्यास कैम्पस का नायक कुलपति चंद्रकांत असहाय नजर आता है। काम के बोझ तले दबे चंद्रकांत की दयनीय दशा को देखकर उसकी पत्नी रत्ना खीझकर कहती है। ''आज तो आपने नाश्ता भी नहीं किया है, शरीर का भी कुछ ध्यान रखो। इतने लोगों को घर पर मिलने का टाइम क्यों देते हो? यह यूनिवर्सिटी तो ऐसे ही चलेगी जान भी दे दोगे तो भी यहां की हालत नहीं सुधरेगी। इस उम्र में कोई बीमारी लग गई तो लेने के देने पड़ जाएंगे। जितने भी लोग आपसे मिलने आते हैं, उन सबके अपने स्वार्थ हैं। स्वार्थ सिद्ध होते ही आपको कोई पूछने तक नहीं आएगा स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखोगे तो जिंदगी भर दुख पाओगे। मैं आपको तनावग्रस्त देख नहीं सकती यदि ज्यादा ही मुसीबत आ रही है तो यह पद छोड़ो।''[2]

विश्वविद्यालय परिसर में अध्यापक वर्ग के मध्य आपसी वैमनस्य, गुटबंदी, ईर्ष्या द्वेष चरम सीमा पर पहुंच गया है कुछ, कामचोर एवं भ्रष्ट प्रोफेसर, ईमानदार कर्तव्यनिष्ठ एवं अनुशासन प्रिय प्रोफेसरों के खिलाफ हमेशा साजिश रचते हैं, जिससे उनकी भ्रष्टाचार रूपी दुकान चल सके। देवेश ठाकुर के उपन्यास गुरुकुल में डॉक्टर ओछेलाल के शिष्य डॉक्टर तिवारी का पुत्र अपने पिता के कर्मो से दुखी होकर उन्हें फटकार लगाता हुआ कहता है। ''मैं उसी सिल्वा की बात कर रहा हूं पापा जिसके भाई के नंबर बढ़ाने के लिए आपको डॉक्टर शीतांशु जोशी तक के पास जाने में कोई शर्म महसूस नहीं हुई। आप हमेशा डॉक्टर शीतांशु जोशी के खिलाफ साजिश रचते हैं लेकिन प्रेमिका के भाई के नंबर बढ़ाने के लिए.... ।''[3]

उपरोक्त कथन डॉक्टर तिवारी जैसे अध्यापकों की आचरण हीनता एवं उच्च शिक्षण संस्थानों में मूल्यांकन प्रक्रिया में हो रहे भ्रष्टाचार को भी इंगित करता है।

शिक्षा के अभाव में व्यक्ति के विकास की कल्पना निराधार है। प्राचीन काल से ही वर्गभेद ने मनुष्य की पाशविक प्रवृत्ति का नग्न चित्र समाज के मन, मस्तिष्क एवं दृष्टि पटल पर अंकित किया है। विद्यार्थियों में देश की एकता, अखंडता, गौरव, एवं समानता की भावना का प्रबल अंकुरण विश्वविद्यालय परिसर में अनुभवी शिक्षकों के मार्गदर्शन से होता है। विद्यार्थियों को जातिवाद, सांप्रदायिकता, जैसी कुरीतियों के कुचक्र से निकाल कर ही एक सजग चिंतनशील एवं श्रेष्ठ नागरिक बनाया जा सकता है, किंतु यह दुर्भाग्य का विषय है कि विश्वविद्यालय परिसर में कुछ प्रोफेसर दलित छात्रों के साथ षड्यंत्र ही नहीं रचते वे उन्हें शिक्षा के मौलिक अधिकार से भी वंचित करने का भरसक प्रयत्न करते हैं, जिससे इस वर्ग के लोगों में हीन भावना तो घर कर ही जाती हैं, साथ ही मानसिक आघात भी होता है, जिससे नफरत का वातावरण बन जाता है। गिरिराज किशोर के उपन्यास परिशिष्ट में उच्चवर्ग के प्रोफेसर द्वारा होनहार छात्र रामउजागर को कैंपस से बाहर निकालने का षड्यंत्र रचने पर प्रोफेसर मलकानी का हृदय विकल हो उठता है। वे कहते हैं। ''राम ने ऐसा क्या किया कि वह आपकी नजरों में एक गुंडा और गिरा हुआ इंसान हो गया? उसने किसके साथ गुंडई की? आपके? आपके? वह पढ़ने में कब पिछड़ा? सिवाय उन दिनों के जब वह अस्वस्थ

हो गया था। फतवेबाजी से आप घृणा को भड़का सकते हैं, पर सत्य का मुंह काला नहीं कर सकते। मानसिक रोग से ग्रस्त आप एक नौजवान को और अधिक रोगी बनाना चाहते हैं। .....अगर आप लोगों ने उसे वापस आने नहीं दिया तो मैं खामोश नहीं बैठूंगा अगर मुझे इस संस्थान को भी छोड़ना पड़े तो आप मुझे पीछे हटता नहीं पाएंगे।''[4] यह कथन प्रोफेसर मलकानी के उज्ज्वल चरित्र को प्रकाशित ही नहीं करता बल्कि उनके मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय भी प्रस्तुत करता है।

राष्ट्र की प्रगति में अनुसंधान का महत्वपूर्ण स्थान है शोधकर्ता की लगन, मेहनत, धैर्य का सम्मिलित रूप उसे समाजोन्मुखी अविष्कार करने की प्रेरणा देता है। उसका अनुसंधान समाज को लाभान्वित करता है, किंतु विडंबना यह है कहीं तो कठिन मेहनत करने के बाद भी शोधार्थी भ्रष्टाचार का शिकार बनता है और कहीं भ्रष्टाचार से ही वह अपना अनुसंधान कार्य पूर्ण करता है। देवेश ठाकुर के उपन्यास कांचघर में सुहास जैसा गरीब, मेहनती, अध्ययनशील शोधार्थी मौखिकी के नाम पर होने वाले खर्चे की चिंता करते हुए कहता है। ''वाइवा की तो फिक्र नहीं है। फिक्र उसे खर्चे की है। एक्सटर्नल एग्जामिनर आएगा। उसे किसी होटल में ठहराया जाएगा। वह शॉपिंग करेगा उसके साथ छाया सा लगना पड़ेगा। एक आध तोहफा भी देना पड़ जाए शायद उन्हें आदत हो तो।''[5] इस वक्तव्य से विश्वविद्यालयों में रिसर्च के नाम पर होने वाली धांधली के चित्र दिखाई देते हैं। इसके साथ ही शिखर पुरुष उपन्यास में डॉक्टर संकल्पनाथ का शोध छात्र छुट्टन सिंह शोध के क्षेत्र में होने वाले भ्रष्टाचार का गवाह है। अपने दोस्त आनंद के पिता के थीसिस संबंधी प्रश्नों का उत्तर देते हुए वह कहता है।

''तुमने कभी अपने निर्देशक महोदय को थीसिस दिखाई?

जी नहीं

तुमने थीसिस खुद लिखी?

सर मैं तो अपने गांव में अपनी जमीन देखता रहा बड़े भैया यहां डॉक्टर संकल्प जी के ही विभाग में हैं उन्होंने क्या किया मुझे नहीं मालूम। पूरी थीसिस भी उन्होंने लिखी है।''[6]

राजनीति के अनैतिक हस्तक्षेप नें शिक्षा को पंगु बना दिया है। शिक्षा के पावन मंदिर को राजनीति ने दूषित ही नहीं किया बल्कि विश्वविद्यालय की गरिमा का भी विध्वंस किया है। एक ईमानदार, सभ्य, कर्तव्यनिष्ठ अध्यापक किस प्रकार राजनीति के कुचक्र में फंस कर निसहाय हो जाता है इसके दर्शन हमें के. एल. कमल के उपन्यास ''कैम्पस'' में दिखाई देते हैं। कुलपति के पद पर आसीन चंद्रकांत जैसा ईमानदार व्यक्तित्व वाला शिक्षक भी अध्यापक संघ, छात्र संघ, शैक्षणिक कर्मचारी एवं अन्य गुटों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है। एन. एस. यू. आई. के सदस्य कुलपति को हड़काते हुए कहते हैं। ''अरे राज हमारा है। सरकार हमारी है। कुलपति को कांग्रेस की सरकार ने नियुक्त किया है। हम जैसा चाहेंगे वैसा इसे करना पड़ेगा, वरना इसे हटाना पड़ेगा।''[7] वहीं दूसरी ओर श्रीचंद और किशोर कुमार जैसे भी लोग हैं जो अध्यापक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं वह छात्रों को भड़काते हुए कहते हैं। ''अरे श्रीचंद इतने से काम नहीं चलेगा यह कुलपति तो आर. एस. एस. की पृष्ठभूमि है इसने तो विश्वविद्यालय का भाजपाईकरण कर दिया है, और यह तो कमल खिला रहा है।''[8]

एक अध्यापक तो छात्रों को बरगलाते हुए यह कहकर उत्तेजित करता है कि ''बिना तोड़–फोड़ किए अध्यापक तुम्हारी बात नहीं मानेगा। वह बहुत ही जिद्दी किस्म का आदमी है ऊपर से मीठा बोलता है लेकिन अंदर जहर भरा हुआ।''[9]

गुरु, शिष्य परंपरा के प्रेरक, भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों के संवाहक कहे जाने वाले विश्वविद्यालयों में ईर्ष्या द्वेष चरम सीमा पर पहुंच गया है। कुछ अध्यापक अपने निजी हितों की पूर्ति हेतु विद्यार्थियों को आंदोलन की आग में झोंकने से भी परहेज नहीं करते ऐसे अध्यापक जो विश्वविद्यालय के परिवेश को दूषित करते हैं, विद्यार्थियों की नजरों में उनका कोई सम्मान नहीं रहता वे उनके लिए एक कलंक मात्र ही हैं। कैंपस उपन्यास में कुछ छात्र ऐसे ही अध्यापकों को फटकारते हुए कहते हैं। ''मास्टरों तुम शिक्षक कहलाते हो, क्लास लेते नहीं हो, उल्टे सीधे काम

करते हो अपने गिरेबॉन में झांक कर देखो इस सरस्वती मंदिर की तुमने क्या हालत कर रखी है? क्या आप लोग इसमें प्रवेश करने लायक भी हो? हमें कुलपति के खिलाफ भड़काना क्या आप लोगों को शोभा देता है? आप अपने निहित स्वार्थ की वजह से या घ्रणित कार्य कर रहे हो।''[11]

जातिगत भेदभाव की दीवार तोड़ने, समता, समानता का नारा बुलंद करने वाले लोग ही जातिवाद को बढ़ावा देने में लगे हुए हैं। गिरिराज किशोर के उपन्यास परिशिष्ट में प्रोफेसर अठावले जैसे लोगों के हृदय में आज भी जात–पात की भावना प्रबल रूप से विद्यमान है। डिप्टी डायरेक्टर के कथन पर वे प्रोफेसर मलकानी को लक्ष्य कर कहते हैं। ''अगर ऐसा ही है तो प्रोफेसर मलकानी से कहिए बेटे–बेटियां बड़े हो रहे हैं उन्हीं लोगों में शादी करके उनके संबंधी होने की इच्छा पूरी कर ले।''[11] अगले जन्म तक इंतजार करने की क्या जरूरत है? उनका यह कथन कोई सामान्य कथन नहीं है बल्कि इससे यह विदित होता है कि शिक्षा के सर्वोच्च संस्थानों में कार्यरत आचार्यों के मन मस्तिष्क में जब तक यह घृणा का बीज अंकुरित होता रहेगा तब तक एक सशक्त एवं समृद्ध राष्ट्र का सपना साकार रूप ग्रहण न कर सकेगा।

उच्च शिक्षण संस्थानों में अध्यापकों की नियुक्ति का उद्देश्य गुणवत्ता युक्त और संस्कार पूर्ण शिक्षा का अबाध गति से संचार करना है, जिससे जीवन मूल्यों का विकास हो सके। देश में ज्ञान विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास राष्ट्र को समृद्धि की असीम उंचाईयों पर पहुंचाए तभी शिक्षा का उद्देश्य सार्थक होगा। इस कार्य के निहित देश की सरकारें इन संस्थाओं को भारी भरकम फंड देने के साथ–साथ अध्यापकों को उचित वेतन व अन्य सुविधाएं भी प्रदान करती हैं, इतनी सुविधा पाने के बाद भी कुछ अध्यापक ऐसे हैं जो कामचोर, आलसी, कर्तव्यविमुख एवं आचरणहीन हैं। काशीनाथ के उपन्यास अपना मोर्चा में एक अध्यापक का यह कथन ''मैंने तुमसे सौ दफा कहा है कि मुझसे ऊपर नहीं चढ़ा जाता मेरी कक्षाएं नीचे ही लगाओ लेकिन हर बार दूसरी या तीसरी मंजिल पर। भैया आखिर क्या चाहते हो? पहले यह बतला दो।''[12] वहीं एक दूसरे शिक्षक अपने क्लास में एक भी लड़की न होने से परेशान होकर कहते हैं। ''लो मेरे वाले ट्यूटोरियल में एक भी लड़की नहीं दी सबों ने।''[13]

विद्यार्थी जीवन में चहुं ओर की चकाचौंध असंतुलन की स्थिति पैदा करती है, जिससे सदमार्ग पर चलने की बात तो दूर उसका अन्वेषण करना भी कठिन हो जाता है। ऐसी विषम परिस्थितियों में एक अच्छा शिक्षक हमारे जीवन का सारथी ही नहीं होता उसे सार्थक करने वाला भी होता है, जो परम हितैषी की भांति हमारे ऊपर कुछ नियम एवं मापदंड लगाकर हमें अनुशासन में जीना सिखाता है। छात्रों के अनुशासनहीन एवं कर्तव्यविमुख होने पर उसे क्रोध ही नहीं आता दुख भी पहुंचता है। अभिभावक की भांति वह भी उन्हें डांट–फटकार का सही मार्ग पर लाने की कोशिश करता है। सत्य व्यास के उपन्यास बनारस टॉकीज में ईमानदार प्रोफेसर अभय सर का यह कथन ''तुम दोनों दफा हो जाओ यहां से। दिन भर बाईक लेके फैकल्टी से लंका और लंका से फैकल्टी करते रहते हो। क्या करते हो? सवारी ढूंढते हो? बेशर्मों अगर सवारी भी ढूंढते तो दो पैसे के आदमी होते। दफा हो जाओ।''[14]

शिक्षित होने का अर्थ सिर्फ साक्षर और आर्थिक रूप से समृद्धशाली होना नहीं है। वह तो इससे परे सत्यम, शिवम, सुंदरम की भावना को साकार रूप प्रदान करने वाली अलौकिक ज्योति है, जिसमें संसार का कल्याण निहित है। वर्तमान शिक्षा के बदलते स्वरूप ने बाजरीकारण एवं राजनीतिक को बढ़ावा दिया है। जिस कारण विश्वविद्यालयों में पदलोलुपता, भ्रष्टाचार एवं उद्देश्यविहीन आंदोलनों की बाढ़ सी आ गई है। विद्यार्थी शिक्षित होकर गांव, समाज, देश व अपनों से कटने सा लगा है जिससे सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों में विघटन की स्थिति पैदा हो गई है। इससे बड़ी चिंता का विषय यह है कि इस कार्य में विश्वविद्यालय में कार्यरत कुछ शिक्षक भी संलिप्त है। प्रसिद्ध उपन्यासकार काशीनाथ सिंह अपने उपन्यास अपना मोर्चा में लिखते हैं। ''बात यह है कि पढ़ाई के इस ढंग को बदलना पड़ेगा। अब तक इस पढ़ाई से क्या हो रहा है कि हम पढ़ते हैं अपने गांव घर के खिलाफ, अपने वर्ग के खिलाफ हो जाते हैं हमें अपना घर गंदा घिनौना लगने लगता है, गांव बेहूदा और घिसघिसा यह काम इतनी बारीकी और सफाई से होता है लड़कों को पता ही नहीं चलता।''[15]

यद्यपि ऐसा नहीं है कि उच्च शिक्षण संस्थानों के परिवेश में कार्यरत सभी अध्यापकों का चरित्र दोषपूर्ण,

अमानवीय एवं वे कर्तव्यहीन है। उच्च शिक्षण संस्थानों में ऐसे अध्यापक भी हैं जिनको उनके अतुलनीय योगदान के लिए राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कृत किया जा चुका है, किंतु कुछ भ्रष्ट अध्यापकों के कारण संपूर्ण शिक्षण संस्थान बदनामी के आगोश में आ जाता है। कैंपस उपन्यास में शिल्पा और शिवानी के बीच का यह कथन इस बात की पुष्टि करता हुआ प्रतीत होता है कि ''सभी अध्यापक एक जैसे नहीं है। उनमें से एक छोटा सा वर्ग है जो अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता शिक्षक जैसा आचरण नहीं करता उतना चरित्रवान भी नहीं है जो उसे होना चाहिए लेकिन क्या इन चंद लोगों के कारण सभी शिक्षक समुदाय को बदनाम करना अनुचित नहीं होगा। अधिकांश अध्यापक कर्तव्यपरायण है चरित्रवान है और छात्रों के हितैषी भी।''[16]

निष्कर्ष

जिस प्रकार कुशल कारीगर के हाथों में पड़कर कच्चा संसाधन बहुमूल्य उत्पाद का रूप ले लेता है उसी प्रकार एक योग्य, ईमानदार अध्यापक अपनी प्रतिभा, मार्गदर्शन एवं कला के बलबूते विद्यार्थियों की विसंगतियों का उन्मूलन कर राष्ट्र की शक्ति हेतु तैयार करता है। उच्च शिक्षा पर लिखे हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त अध्यापक वर्ग का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह कि पात्र केवल ज्ञान के संवाहक ही नहीं बल्कि समाज, नैतिकता और व्यक्ति विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन उपन्यासों में चित्रित पात्रों के आदर्शवादी, यथार्थवादी, संघर्षशील और कभी–कभी भ्रष्ट, अनुशासनहीन, कर्तव्यहीन स्वरूप को भी उपन्यासकार द्वारा उजागर किया जाता है। यह शोध पत्र उच्च शिक्षा से अनुप्राणित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त अध्यापक वर्ग की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक समस्याओं को चित्रित करने के साथ–साथ संस्थागत राजनीति, नौकरशाही, भ्रष्टाचार और व्यवसायीकरण पर प्रकाश डालने के अतिरिक्त शिक्षा के बदलते परिवेश, शिक्षकों की भूमिका, शिक्षा जगत की चुनौतियां को समझने का भी यत्किंचित प्रयास है।

सन्दर्भ सूची

1. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र (2002) *हिंदी साहित्य का इतिहास,* लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, पृ.1।
2. कमल, के. एल. (2011) *कैम्पस,* सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, पृ. 38।
3. ठाकुर, देवेश (2007) *गुरुकुल,* शैवाल प्रकाशन, गोरखपुर, पृ. 63।
4. किशोर, गिरिराज (2011) *परिशिष्ट,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 305।
5. ठाकुर, देवेश (2011) *कांचघर,* नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 61– 62।
6. ठाकुर, देवेश (2011) *शिखर पुरुष,* नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 145।
7. कमल, के. एल. (2011) *कैम्पस,* सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, पृ. 13।
8. कमल, के. एल. (2011) *कैम्पस,* सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, पृ. 12।
9. कमल, के. एल. (2011) *कैम्पस,* सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, पृ. 34।
10. कमल, के. एल. (2011) *कैम्पस,* सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, पृ. 34–35।
11. किशोर, गिरिराज (2011) *परिशिष्ट,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 305।
12. सिंह, काशीनाथ (1985) *अपना मोर्चा,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 43।
13. सिंह, काशीनाथ (1985) *अपना मोर्चा,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 41।
14. व्यास, सत्य (2023) *बनारस टॉकीज,* हिंदी युग्म प्रकाशन, नोएडा उत्तर प्रदेश, पृ. 124।
15. सिंह, काशीनाथ (1985) *अपना मोर्चा,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 37।
16. कमल, के. एल. (2011) *कैम्पस,* सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, पृ. 127।

——==00==——